**ओ३म्**

**‘ईश्वराधीन कर्म-फल व तद् आश्रित सुख-दुःख व्यवस्था पर विचार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार में मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त जड़-चेतन जगत क्रियाशील हैं। सृष्टि पंचभौतिक पदार्थों से बनी है जिसकी ईकाई सूक्ष्म परमाणु है। यह परमाणु सत्व, रज व तम गुणों का संघात है। इन्हीं परमाणुओं से अणु और अणुओं से मिलकर त्रिगुणात्मक प्रकृति व सृष्टि का अस्तित्व विद्यमान है। परमाणु में इलेक्ट्रान कण भी निरन्तर गति करते रहते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति से भी पूर्व निर्मित इन परमाणुओं में इलेक्ट्रान ईश्वरीय नियमों के अनुसार गति करते आ रहे हैं एवं प्रलय अवस्था तक यह क्रम निरन्तर चलता रहेगा। मनुष्य व सभी प्राणियों में प्राणों का बाहर आना व अन्दर जाना निरन्तर होता रहता है। पलकें भी निरन्तर झपकती रहती हैं। जागृत अवस्था में मनुष्य का मन भी निरन्तर क्रियाशील रहता है। मन आत्मा से प्रेरणा लेता है और ज्ञान व कर्मेन्द्रियों को कर्मों में प्रवृत्त करता है। उठना-बैठना, चलना-फिरना, सोना-जागना, शौच जाना, भोजन करना, मल-मूत्र का त्याग आदि भी क्रियायें एवं कर्म हैं जो जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं। इनसे भिन्न किसी विषय का चिन्तन वा विचार, तदनुसार शरीर को उसके अनुसार प्रवृत्त कर इच्छित परिणाम प्राप्त करना आदि भी सभी मनुष्य करते हैं। हमारे यह सभी कर्म हमारी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक व आत्मिक उन्नति का आधार होते हैं। हमारे अनेक कार्यों वा क्रियाओं का प्रभाव पर्यावरण-परिवेश-वातावरण व दूसरे मनुष्यों पर भी पड़ता है। इसी प्रकार से दूसरे मनुष्यों व प्राणियों के कर्मों वा क्रियाओं का प्रभाव भी हम पर पड़ता है। अन कर्मों का यदि विभाजन व वर्गीकरण किया जाये तो मुख्यतः यह शुभ व अशुभ कर्म कहे जा सकते हैं। हमारे जिन कर्मों से हमें लाभ होता है परन्तु दूसरे निर्दोष प्राणियों वा मनुष्यों को किसी प्रकार से हानि नहीं पहुंचती, उन्हें शुभ कर्म कहा जा सकता है और इसके विपरीत कर्मों को अशुभ कहा जा सकता है। कर्म-फल व्यवस्था से सम्बन्धित एक शास्त्रीय वचन है **‘अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।’** अर्थात् मनुष्य को अपने किये हुए शुभ व अशुभ कर्मों के फल भोगने ही होते हैं।

कर्मफल व्यवस्था के सन्दर्भ में सृष्टि की उत्पत्ति के प्रयोजन को जानना भी महत्वपूर्ण है। सृष्टि की उत्पत्ति क्यों हुई? इसका उत्तर चारों वेदों एवं समस्त वैदिक व अवैदिक साहित्य के मर्मज्ञ महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में दिया है। सत्यार्थप्रकाश के अष्टम् समुल्लास में वह ऋग्वेद के एक मन्त्र **‘इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।’** प्रस्तुत कर इसका अर्थ करते हुए लिखते हैं कि जिस से यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलयकर्ता है, जो इस जगत् का स्वामी है, जिस सर्वत्र व्यापक सत्ता में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है। उस को, हे मनुष्य ! तू जान और दूसरे किसी को सृष्टिकर्ता मत मान। इस मन्त्र में ईश्वर की सत्ता तथा उसके सृष्टि उत्पन्न करने के कार्य को बताया गया है। ईश्वर व सृष्टि के अस्तित्व को जान लेने के बाद प्रश्न होता है कि ईश्वर ने यह सृष्टि क्यों व किस प्रयोजन के लिए बनाई है? सृष्टि को देखकर ईश्वर का अपना कोई निजी प्रयोजन विदित नहीं होता। हम संसार में उद्योगों को देखते हैं जहां विवधि वस्तुओं का निर्माण होता है जिसे उद्योगपति दूसरे लोगों के उपयोग व धन कमाने के लिए करता है। उद्योगपति मनुष्य है अतः उसका प्रयोजन धन कमाना है व इससे अन्यों का हित भी जुड़ा, परन्तु ईश्वर मनुष्य नहीं है, वह धन व ऐसे किसी कार्य के लिए सृष्टि की रचना व पालन आदि कार्य नहीं करता। उसे किसी से किसी पदार्थ की अपेक्षा भी नहीं है। हां, जीवों को सुख व दुःख का मिलना इसका प्रयोजन प्रतीत होता है। ऋग्वेद के मन्त्र **‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।’** के शब्दों तयोरन्यः व स्वाद्वत्ति में कहा गया है कि (तयोरन्यः) इस संसार में जीव व ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोक्ता है। यहां कहा गया है कि जीवात्मा अपने शुभ व अशुभ जो पुण्य व पाप कर्म कहे जाते हैं उनके फलों अर्थात् सुख व दुःखी रूपी भोगों को भोक्ता अर्थात् उनका परिणाम व फल को पाता व ग्रहण करता है। वेद अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर ज्ञात होता है कि ईश्वर ने इस सृष्टि को जीवों के पाप व पुण्यरूपी कर्मों के फलों को प्रदान करने के लिए ही अपनी सामथ्र्य से मूल-कारण प्रकृति के द्वारा इस सृष्टि की रचना की है। श्वेताश्वरोपनिषद् के श्लोक **‘अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।’** में कहा गया है कि इस अनादि प्रकृति से निर्मित सृष्टि का भोग करता हुआ अनादि जीवात्मा उसमें फंसता है। फंसने का तात्पर्य है कि जीवात्मा सृष्टि में फलों व सुख की कामना से कर्म करता हुआ इसमें फंसता है अर्थात् ईश्वर की कर्म-फल व्यवस्था में बंधता है। यदि इसे उलट दिया जाये तो इसका अर्थ होता कि यदि जीव संसार में सुख आदि भोगों की इच्छा से रहित होकर ईश्वरोपासना व परोपकारादि कर्मों को करता है तो वह बन्धनों में फंसता नहीं अपितु मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त **‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया’** मन्त्र में ईश्वर, जीव व प्रकृति के अस्तित्व को अनादि बताया गया है। यह तीनों पदार्थ वा सत्तायें अनादि काल से विद्यमान हैं। ईश्वर को उपादान कारण प्रकृति से सृष्टि की रचना करने व इसे चलाने का ज्ञान स्वभाविक रूप से अनादि काल से है। जीवों को मनुष्य या प्राणियों के शरीर चाहियें तभी वह अपनी ज्ञान व कर्म स्वभाव वाली सत्ता का उपयोग अर्थात् पूर्व कर्मों का भोग व नये कर्मों को कर सकते हैं। यदि सृष्टि न हो तो उनका अस्तित्व निरर्थक सिद्ध होता है। यदि ईश्वर सृष्टि बनाने की सामथ्र्य रखता है, वह सृष्टि की रचना न करे तो उसका अस्तित्व होना उपयोगी नहीं और उसका ईश्वरत्व वा स्वामीत्व भी किसी काम का नहीं। इसी प्रकार से प्रकृति से यदि सृष्टि न रची जाये तो इसका अस्तित्व भी निरर्थक ही सिद्ध होता है। अतः जीवों को अपने अपने प्रारब्ध का भोग और नये कर्मों को करने के लिए ईश्वर द्वारा उपादान कारण प्रकृति का उपयोग कर सृष्टि की रचना करना आवश्यक है। ईश्वर कुछ जीवों को मनुष्य और किन्हीं को भिन्न-भिन्न प्राणी योनियों में उत्पन्न करता है, इसका आधार जीवों के सृष्टि के पूर्व कल्पों वा पूर्वजन्मों के कर्म वा उन कर्मों का संचय रूपी प्रारब्ध होता है। यह उत्तर वैदिक दार्शनिकों ने सृष्टि विषयक तथ्यों का सूक्ष्म विवेचन करने पर पाया है। इस प्रकार से ईश्वर पक्षपात रहित न्यायकारी सत्ता सिद्ध होती है। ईश्वर के सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी होने से वह सृष्टि के सभी जीवों का सभी कालों में साक्षी होता है। उसे हर जीव के हर कर्म का यथावत् अर्थात् मन व आत्मा के आन्तरिक भावों से लेकर कर्म का निर्णय करने से कर्म को करने तक का ठीक-ठीक ज्ञान रहता है, अतः उसे जीवों के कर्मों का फल देने में किसी प्रकार की समस्या व कठिनाई नहीं होती।

संसार में एक नियम काम कर रहा है कि हम जो भी कर्म करते हैं उनमें से कुछ क्रियमाण कर्मों का फल हमें साथ-साथ व कुछ का कालान्तर में मिलता है। जीवन के अन्त अर्थात् मृत्यु से पूर्व कर्म जिन्हें क्रियमाण कर्म कहा जाता है, उनका फल साथ-साथ मिल जाता है और अवशिष्ट संचित कर्मों का फल मृत्यु तक नहीं मिलता। इससे यह ज्ञात होता है कि कर्मों का फल वर्तमान व भविष्य दोनों कालों में सुख व दुःख के रूप में मिलता है। इससे यह भी सिद्ध है कि हमारा वर्तमान का सुख व दुख हमारे कुछ वर्तमान और कुछ पूर्व समय अर्थात् भूतकाल में किये हुए कर्मों पर आधारित है। मृत्यु के समय जिन शुभ व अशुभ कर्मों का फल भोगने से रह जाता है, प्रारब्घ नामी कर्म कहलते हैं, यह प्रारब्ध ही भावी जन्म अर्थात् पुनर्जन्म का आधार है। मनुष्य के जैसे कर्म व प्रारब्ध होगा, उसी के अनुसार नये जन्म में जाति, आयु और भोग प्राप्त होंगे। योगदर्शन की यह बात तर्क एवं युक्ति संगत है। वेदों व स्मृतियों आदि के आधार पर मनुष्यों को सन्ध्या व दैनिक अग्निहोत्र यज्ञ सहित पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा बलिवैश्वदेवयज्ञ करने का विधान है। इन्हें करने से हमारा वर्तमान जीवन और भावी जीवन सुधरता व संवरता है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत काल तक और उसके बाद भी विद्वानों द्वारा वेद मार्ग पर ही चलने का निर्देश दिया गया है। हमारे पूर्वज ज्ञान विज्ञान से पूर्ण सत्य का आचरण करने वाले थे, अतः उनकी युक्ति व तर्क संगत बातों को सभी मनुष्यों को मानना चाहिये। शंकालु बन्धुओं को वेद, दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति व सत्यार्थप्राकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर अपनी भ्रान्तियां दूर करनी चाहिये। संसार के अन्य ग्रन्थों का अध्ययन कर इस विषय का ज्ञान व समाधान नहीं होता। सभी कर्मों का फल ईश्वर देता है। किस कर्म का क्या फल होता है, यह ईश्वर को ज्ञात है जो कि उसकी व्यवस्था से हमें व सभी जीवों व प्राणियों को अवश्य मिलेगा। हमें ईश्वर के पक्षपात रहित व न्यायकारी होने में पूरा विश्वास रखते हुए बुरे कर्म नहीं करने चाहिये और अपने सभी अच्छे कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर निश्चिन्त होना चाहिये। इसका परिणाम शुभ होगा।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के दूसरे मन्त्र में मनुष्यों को वेदविहित कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की कामना करने की शिक्षा दी गई है। वेद विहित कर्मों को करने से मनुष्य अशुभ व पाप कर्मों करने से बच जाता है जिसका परिणाम दुःखों से मुक्ति व सुखों में वृद्धि होता है। वेद विहित कर्म न केवल सुखों की वृद्धि वा दुःखों की निवृति का आधार हैं वहीं इनसे मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। अतः सद्कर्मों को करने के साथ सभी मनुष्यों को इनका प्रचार करने का प्रयत्न भी करना चाहिये।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**